भाव पक्ष

वचनिका की कथा केवल कथा न होकर इस देश का और विशेषकर राजस्थान का जीवनादर्श रहा है। यह कोई कपोलकल्पित कथा नहीं है। यह तो इतिहास-सम्मत है, जिसके पात्र व घटनास्थल सभी ऐतिहासिक सत्य हैं। राजस्थान का इतिहास ऐसी क़थाओं से भरा पड़ा है। गाँव-गाँव में जूझारों और सतियों के जो कीर्ति-पत्थर (पाळिया) आज भी दिखाई पड़ते हैं, उनमें से प्रत्येक के नीचे एक इतिहास दबा पड़ा है, जिसे उद्‌घाटित करने की नितान्त आवश्यकता है, तभी राजस्थान का सच्चा इतिहास लिखा जा सकेगा। 'अचळदास खीची री वचनिका' ऐसी घटना पर आधारित है, जिसे लेखक शिवदास ने अपने नग्न चक्षुओं से देखा है। यदि उसे युद्ध से विरत नहीं किया जाता तो कदाचित् वह भी वीरगति को प्राप्त हुआ होता! इसके अतिरिक्त वह राज्याश्रित था। अपने आश्रयदाता का कीर्तिगान उसका धँधा था—धर्म था, जिसे उसने बखूबी निभाया।

शिवदास की यह भावाभिव्यक्ति किसी आवेश के कारण नहीं थी, यह तो उसके हृदय-तन्त्री की झनकार थी, जिसे उसने वाचा दी और वाचा भी ऐसी कि जिससे वह और उसका काव्य दोनों कालजयी बन गये।

श्री नाथूदान महियारिया रचित 'वीर सतसई' में सत्य ही कहा गया है कि—

जे करसी उणरी हुसी, आणी बिण नूतीह।

अे नह किणरे बापरी, भगती रजपूतीह।।[42]

भक्ति और क्षत्रियत्व वास्तव में किसी एक जाति या वर्ग की बपौती नहीं है। गागरोण का युद्ध इसका साक्षी है। इस युद्ध में केवल क्षत्रिय ही लड़े हों, ऐसी बात नहीं है। इसमें तो ब्राह्मण, बनिये, चारण, भाट सभी ने अपना योगदान दिया। यहाँ तक कि कनिष्ठ कहे जाने वाले लोगों ने भी क्षत्रियों के साथ युद्ध में अपने दो-दो हाथ दिखलाये—''ब्राह्मणां मांहि तउ कवण-कवण? **रिखी सारंग गुरु नाराइण** वाण्यां मांहि तउ **हरपति, लालउ, वैजउ, वालउ**। भाट मांहि

42. यद्यपि वीर सतसई के सम्पादक के रूप में श्री नाथूदानजी के पुत्र श्री मोहनसिंह का ही नाम छपा है, पर इसके संपादन का सारा कार्य आचार्य बदरीप्रसाद साकरिया और कुछ श्री सीताराम लालस ने किया है। प्रमाण स्वरूप इसकी सम्पूर्ण पत्राचार और कार्य की फाइल आज भी हमारे पास सुरक्षित है।

Scanned by CamScanner

तउ गांगउ तिलोकसी कउ, चारण मांहि माधउ, सादउ, नापउ, बारहट तउ लाऊ, सेऊ। इसाहेक केताहेकां का नांव लीजइ। कनेस्ट वंस सूध छत्तीस ही राजकुली छत्तीस ही वंस, अेक अेक हवइ लोहड़इ मिळी।'' अतएव इस काव्य में क्षत्रियों के साथ-साथ अन्य सभी कौमों ने जिस धैर्य, साहस, बलिदान व ध्येय-निष्ठा का परिचय दिया है, उसे देख कर तो इसे राष्ट्रीय काव्य कहना अधिक समीचीन होगा।

वचनिका एक लघु वीर रसात्मक काव्य है, जिसका घटनाचक्र व्यक्तिगत शौर्य, युद्ध और जौहर के चारों ओर केन्द्रित है। इसका प्रधान रस वीर है। 'उत्साह' इसका स्थायीभाव है जो शत्रु के उत्कर्ष, उसकी ललकार, दीनों की दशा आदि से उत्पन्न होता है। इस रस का वर्ण गौर और देवता महेन्द्र माना गया है, इसका आलम्बन प्रतिपक्षी या शत्रु है। उद्दीपन में सेना, रणवाद्य, सैनिकों का कोलाहल, शत्रु का प्रताप आदि का समावेश होता है। अनुभव में भुजाओं की फड़कन, अस्त्र-शस्त्र का प्रहार, आक्रमण या भिड़न्त आते हैं जबकि संचारी भाव के अन्तर्गत स्मृति, रोमांच, हर्ष, गर्व और उग्रता आदि आ जाते हैं।

जब मांडूपति हौशंगशाह अपनी विशाल वाहिनी के साथ अचळदास के प्रदेश को रौंदता, गागरोन गढ़ पर आक्रमण करता है[43] तो शत्रु की ललकार और प्रजा की करुण पुकार, अचळदास को शत्रु से लोहा लेने के लिये उत्साहित करती है। उत्साह के लिये यह आवश्यक है कि वह न केवल लोक-सम्मत हो बल्कि सात्विक भी हो। अपनी लालसावृत्ति के कारण दूसरों के प्रदेश को हड़पना और प्रजा पर अकारण ही अत्याचार करना, निश्चय ही न्यायसंगत नहीं है। हौशंगशाह का आक्रमण भी अन्याय पर आधारित होने के कारण लोकसम्मत नहीं था जबकि प्रजा की रक्षार्थ किया गया प्रतिकार लोक-सम्मत था। इसका सबसे बड़ा प्रमाण है, सभी जातियों का संगठित हो दुश्मन का सामना करना। दूसरी ओर अचळदास अपने पुत्रों, सामन्तों और अपनी माता, पुत्री तथा पत्नियों से प्रोचित था। रानियों के उत्साहवर्धक वचनों से अचळदास निश्चिंत बन जाता है, वे कहती हैं—

सामी! तू सर जाळि पड़सिस पुहपाई कहइ।
हउं ऊजाळिसि आपणा त्रेवे पख तिणि ताळि।।

और

''पिण कथीर न जपई कनक हइ, अे तउ न जीपइ हम-हइ। सिव-सगती सम जुगती। सिव हारयउ जीत्यउ सगति। .... जू अम्हे मूवां की गैल मरां, माइ-बाप वीसरां, तीनि पख ऊधरां, अबइ यउ अभिमान कउण सउं करां।''

युद्ध-वर्णन वचनिका में अपेक्षाकृत बहुत कम है। जौहर-वर्णन में कवि का मन अधिक रंजित रहा है। युद्ध और महायुद्ध संसार में अनके हुये हैं, पर जौहर तो भारत और वह भी

43. बारह लक्ख त छइ वड पइदल।
मदिमत्ता चवरासी मइंगल॥
साहण सहस तीस अर तेरह।
आलमसाह अड़ी चउ-फेरह॥

Scanned by CamScanner

राजस्थान की ही देन है। नई-नवेली के समान सोलह शृंगार कर, भगवान का नाम स्मरण करती हुई, भव-भव के भरतार से फिर मिलने की आशा में, क्षात्रतेज से मंडित, इन महिलाओं का समूह में अग्नि-प्रवेश, किस सहृदय के प्राणों को झंकृत नहीं कर देता? आत्मत्याग के इस होड़ को कवि के शब्दों में देखिये—

जउहर माहि जळिवाह, इसइ तेज पइसर अनळ।
पहिली थी रहि पाछिली, पग अेक पड़खड़ नाह॥

मरण के इस अपूर्व त्यौहार से अभिभूत होकर कवि भावोदधि में बह गया हो तो कोई आश्चर्य नहीं।

वात्सल्य और करुण रस की एक मिश्रित झलक हमें उस समय देखने को मिलती है, जब पाल्हणसी अपने वीर पिता के वीर पुत्र की भाँति युद्ध से विरत नहीं होना चाहता। क्या पिता और क्या माता, सभी उसके वीरोचित वचनों से मन-ही-मन प्रसन्न होंगे, पर वे यह भी चाहते थे कि उनके वंश की रक्षा हो और भविष्य में शत्रु से बदला लेने वाला एक नर-सिंह जीवित रहे। कितनी कसमसाहट हुई होगी उनके हृदय में? कितना मनोमंथन करना पड़ा होगा उनको प्रणालिका से हटने में? वात्सल्यवश वे विचलित हो जाते हैं और अश्रुपूर्ण नेत्रों से अपने सिंह-सदृश बच्चे को डाँटते हुये दिखाई देते हैं। पितृ-आज्ञा के वशीभूत होकर जब पाल्हणसी युद्ध से विरत हो जाता है तो हर्ष से उल्लसित और अश्रु भीगे नयनों से अचळदास उसे अपने अंक में भर लेता है। उपस्थित जन-समुदाय रो पड़ता है—

पाल्हणसी पुहविहि रह्यउ अनि संमह्या सरग्गि।
तिणि वेळा हीया भरि राइ राइ रोवण लग्गि॥

करुण रस में फिर मिलने की आशा समाप्त हो जाती है और इसीलिए अचळदास जब 'आंसू पूंछि अंकमाल लियउ' अंतिम बार पाल्हणसी भेंटता है तो सबके हृदय द्रवीभूत हो जाते हैं।

जैसा कि मैं ऊपर निवेदन कर आया हूँ, प्रस्तुत ग्रन्थ डींगळ की एक प्रसिद्ध व प्रतिनिधि कृति है। डींगळ के अपेक्षाकृत क्लिष्ट होने के कारण इस संपादित ग्रन्थ में शब्दार्थ, व्याख्या और इसके सभी पहलुओं से परिचय कराती हुई एक शोधपरक भूमिका प्रस्तुत करने का भी प्रयत्न किया गया है। ऐसा करते समय कई ऐसे प्रश्न उठे हैं, जिनके ऐतिहासिक, साहित्यिक व सामाजिक हल अपेक्षित हैं।

डींगळ साहित्य को समझने व समझाने वालों की पीढ़ी अब समाप्त हुई जा रही है। अतएव इस भाषा के साहित्य-रसिकों और शोधार्थियों के लिये यह उत्तम रहेगा कि इन शेष-विद्वानों के चरणों में बैठ कर जितने प्राचीन ग्रन्थों का शीघ्रातिशीघ्र संपादन किया जा सके तथा उसकी सर्वभोग्य टीकायें लिखीं जा सकें, उतना श्रेयस्कर होगा।

जिनकी मातृभाषा राजस्थानी तो क्या कोई भारतीय भाषा भी न थी, ऐसे इटालियन विद्वान डॉ. तैस्सितौरी के ऋण से कैसे उपकृत हुआ जा सकता है? 'क्रिसन रूकमणी री वेलि' और 'वचनिका रतनसिंघ महेसदासोत री' का सम्पादन कर उन्होंने हर राजस्थानी को लज्जित

कर दिया। उनसे प्रेरणा पाकर अनेक योजनाएँ बनीं, जिनके अन्तर्गत अनेक महत्त्वपूर्ण और शोधपूर्ण कार्य सम्पन्न हुये हैं।

अनेक हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर 'वचनिका रतनसिंघ महेसदासोत री' का संपादन करते समय उन्होंने 'अचळदास खीची री वचनिका' का भी अवश्य अध्ययन किया था और तभी तो उन्होंने इस वचनिका को Classical Model मान कर इसकी प्रशंसा की थी। ऐसे इस ग्रन्थ का आज से बीस वर्ष पूर्व श्री दीनानाथ खत्री ने अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर से उपलब्ध एक प्राचीन प्रति (सं. 1631) के आधार पर इसका संपादन किया था। तब से अब तक इस ओर किसी का ध्यान आकृष्ट नहीं हुआ है, जबकि 'वचनिका रतनसिंघ महेसदासोत री' के दो और संपादित संस्करण भिन्न-भिन्न विद्वानों द्वारा प्रकाशित हो चुके हैं। श्री दीनानाथ खत्री न तो व्याख्या ही दे पाये और न तत्सम्बन्धी सर्व विषयों को संस्पर्श करती हुई कोई भूमिका ही। इसके अतिरिक्त परिशिष्ट के शब्दकोश में भी ऐसे शताधिक शब्द हैं, जिनके अर्थ नहीं दिये जा सके थे।

मैंने भी बीकानेर वाली हस्तलिखित प्रति को आधार माना है, पर उपर्युक्त अभावों की पूर्ति करते हुये इसे नये परिवेश में पाठकों के सम्मुख रखा है। विश्वास है कि यह पुनर्सम्पादित कृति सबके लिए उपयोगी रहेगी। इसके साथ-साथ श्री दीनानाथ खत्री ने परिशिष्ट में आचार्य पं. बदरी प्रसाद साकरिया द्वारा सम्पादित 'लालां मेवाड़ी री वात' की जो लोकवार्ता दी है, उसको भी यहाँ अविकल रूप से दिया गया है। हमारे हस्तलिखित संग्रह में इस वार्ता की एक प्रति है जो बीकानेर वाली वचनिका से केवल सात वर्ष (सं. 1638) बाद में लिखी हुई है। इससे इसकी प्राचीनता का पता चलता है। यह वार्ता इतनी लोकप्रिय रही है कि इसकी अनेक प्रतियाँ प्राचीन भण्डारों में मिल जाती हैं। 'अचळदास खीची री वचनिका' को समझने में भी लोक वार्ता होते हुये भी इससे थोड़ी-बहुत सहायता तो मिलती ही है।

हमारे परिवार के साथ आदरणीय डॉ. रघुवीरसिंहजी, सीतामऊ का सम्बन्ध विशेष मधुर रहा है। अचळदास खीची के वंश वृक्ष को प्रेषित करने और अन्य उपयोगी सूचनाओं के लिये मैं उनका हृदय से आभारी हूँ।

पू. पिताजी पं. बदरी प्रसादजी साकरिया का सतत मार्ग-दर्शन और समय-समय पर अनेक साथ की तद्विषयक चर्चाएँ, सम्पादन-कार्य को सुचारु रूप से सम्पूर्ण करने का आधार स्तम्भ रही हैं। मैं उनका ऋणी ही रहा चाहता हूँ।

'अचळदास खीची री वचनिका' के सम्पादन की मूल प्रेरणा तो पंचशील प्रकाशन, जयपुर के संचालक श्री मूलचन्दजी गुप्ता से मिली। यह कार्य उनके बार-बार के आग्रह का ही सुफल है। वे तो हमारे अनेक ग्रन्थों के प्रकाशक हैं, और इस प्रकार उनसे धीरे-धीरे घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो गया है। 'अचळदास खीची री वचनिका' के प्रकाशन का सारा श्रेय उनको ही है।

896, साकरिया सदन
वल्लभविद्यानगर (गुजरात)

Scanned by CamScanner